Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

हिन्दी उपन्यासों में पुरुष संवेदना

सुनीता मीना*

* शोधार्थी (हिंदी) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – प्रकृति की सुन्दरता नैसर्गिक रूप से दो विपरीत ध्रुवों पर आश्रित रहती है, वह दोनों धुरियाँ नर और नारी है जो जीवन के नवाचार से सम्बंधित है। हिंदी साहित्य का लेखन कभी भी एक ओर झुका हुआ नहीं रहा है। हिंदी साहित्य ने भी लगातार इस क्रम को संतुलित रखा है। जैसे-जैसे नवीनता का प्रादुर्भाव हुआ है वैसे ही हिंदी जगत ने अपनी कलम को भी उसी ओर ढाला है। परिवर्तन,विकास, क्रांति ये प्रकृति के शाश्वत नियम हैं। हर युग में क्रांतियाँ और आंदोलन हुए हैं, आज भी हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। जिसके फलस्वरूप व्यवस्था में परिवर्तन होता है और निरंतर विकास का मार्ग प्रशस्त होता रहा है। हिंदी साहित्य में स्त्री संवेदना पर विपुल कार्य हुआ है, परंतु पुरुष संवेदना के स्तर पर गंभीर, सुसंगत एवं व्यवस्थित अध्ययन की कमी रही है। पितृसत्ता के भीतर भी पुरुष किस प्रकार मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबाव और भावनात्मक कुंठाओं से ग्रस्त होता है यह पक्ष साहित्यिक विश्लेषण के लिए अपेक्षित है। यह शोध साहित्य में पुरुष की छवि को एक नई दृष्टि देने का प्रयास करेगा।

शब्द कुंजी – संवेदना, मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबाव, समाज,परिवार, जीवन आकांक्षा।

प्रस्तावना – वर्तमान समय वैश्विकरण के चलते पैराडिम शिफ्ट हुआ है। और इस स्त्रीवादी मानसिकता ने पुरुष की उपलब्धियों पर सवाल खड़ा कर, उसे डुबाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। समाज में बराबरी का दर्जा प्रदान करने के लिए पुरुष ने अपने से कभी भी इसका विरोध नहीं किया। लेकिन इस बराबरी की लड़ाई में पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता और स्त्रीवर्चस्ववादी मानसिकता ने पुरूष को अपनी चली आयी परंपरा में वस्तुनिष्ठ बना दिया है जानबूझ कर पुरुष को कहीं न कहीं अतिवाद की ओर धकेला जा रहा है। इसलिए वर्तमान समय में पुरुष की संवेदनाओं उसकी जीवन आकांक्षाओं और मूल्यों की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। जहाँ पुरुष संवेदना मानव मन के भीतर की आंतरिक चेतना है वहाँ स्त्री अपने बराबरी और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करती नजर आयी हैं उसी तरह क्या पुरुष भी अपने जीवन में स्वयं के बारे में सोच सकता है इस पर विचार करना जरूरी है। साथ ही समकालीन विमर्श के साहित्य में पुरुष के जीवन का चिन्हांकन करना भी आवश्यक हो जाता है। इस विषय पर मैनेजर पाण्डेय लिखते है कि 'हिन्दी कथा साहित्य में विशेषकर उपन्यास में व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ उपस्थित होता है उपन्यास में व्यक्ति की वैयक्तिकता जिन सामाजिक संदर्भो के साथ से बनती है उनसे व्यक्ति के संबंधों की जटिलता का बोध उपन्यास में व्यक्त होता है।'[1] इसलिए पुरुष संवेदना के विचार समाज,परिवार और सार्वजनिक जीवन में योगदान का आकलन करना जरूरी हो जाता है

मानवीय संवेदना शब्द का सामान्य अर्थ मानव के प्रति सहानुभूति है। अंग्रेजी में इसे सिम्पथी कह सकते हैं। सहानुभूति मानव मन का उदात्त भाव है क्योंकि वह परात्मभाव से युक्त होने के कारण सुख-दुख की अनुभूति कराता है। मनोविज्ञान शास्त्र में संवेदना का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव होता है और वहाँ इसे सेंसेसन के रूप में ग्रहण करते हैं। उत्तोजक वस्तु संवेदना का मूल आधार है। 'कामायनी' महाकाव्य के आशासर्ग की निम्न पंक्तियों में भी मानवीय संवेदना के भाव प्रकट होते है जैसे कि

'मनु का मन या विकल हो उठा, संवेदन से खाकर चोट।
संवेदन जीवन जगती को, जो कटुता से देता घोट ।।'[2]

अत: मानव मन की भीतर की व्याकुलता ही संवेदना को प्रकट करता है,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानवीय संवेदना पर लिखा है कि 'संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है.... मतलब यह कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना ही संवेदना है।'[3] किन्तु इसी संदर्भ में डॉ.द्वारिका प्रसाद नेमानवीय संवेदना पर विचार करते लिखा है कि 'संवेदना का अर्थ सुख-दुख मिश्रित अनुभूति के अर्थ में ग्रहण किया है। उनके अनुसार सुख दुखात्मक अनुभूति ही संवेदना है। उसमें भी दुखानुभूति से इसका गहरा सम्बन्ध है क्योंकि जब किसी प्रकार का अभाव हमारे जीवन में उत्पन्न होता हैतब उसकी दुखानुभूति सर्वप्रथम हमें बैचेन एवं व्यथित कर देती है और हमारे हृदय में संघर्ष उठ खड़ा होता है।'[4] हिंदी उपन्यासों में पुरुष का चरित्र केवल कथा का वाहक नहीं वह समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विचारधारों का केंद्र भी रहा है। समाज में पुरुष की सैद्धांतिक भूमिका को हिन्दी उपन्यासों के भीतर उपजे विचारों को केन्द्रित करते हुए पुरुष संवेदना के आधार पर हिन्दी उपन्यास का सैद्धांतिक ढांचा तीन प्रमुख सिद्धांत पर विभक्त कर सकते है जों समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण पर आधारित है जिससे पुरुष संवेदना को विभिन्न स्तरों पर समझा जा सकता है।जिससे साहित्य समाज में पुरुष चरित्र के बदलते रूप, उसके सामाजिक और मानसिक संरचना में होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण किया जाएगा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने पर प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास समाजशास्त्रियों की दृष्टि जैसे एमिल दुर्खीम, मार्क्स और मैक्स

वेबर के अनुसार व्यक्ति की भूमिका सामाजिक ढाँचे, आर्थिक शक्तियों और वर्गीय संबंधों से निर्धारित होती है। गोदान में पुरुष पात्र होरी वही सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है जिसे समाज परंपरा, नैतिकता और आर्थिक शोषण के माध्यम से नियंत्रित करता है। जैसे 'गोदान' उपन्यास में होरी कहता है कि 'खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो ! उनकी जान को भी सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुँचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुश करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियाँ-घुड़कियाँ ही तो मिलकर रह जाती हैं।'[5] इस तरह पुरुष पात्र होरी अपने जमीदार के प्रति चिंता करना वर्गीय संबंधो का निर्धारण है जहाँ स्वयं शोषित है साथ ही होरी की परिवारविषयक धारणा भी सामाजिक परम्परागत है। और साथ ही वह सामाजिक संबंधो से चिपके रहना भी चाहता है, चाहे पंचायत के निर्णय को ठुकरा सकता था। पर बिरादरी से बहिष्कृत होकर जीना होरी के लिए सम्भव नहीं है। अत: वह धनिया के विरोध करने पर भी पंचायत के द्धारा लगाया हुआ दंड भरता है। उसकी धारणा है कि 'हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। नक्कू बन कर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जाएँ तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी। बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे।'[6] इस तरह होरी धर्म के नाम पर बिना हिचक शोषण का शिकार बनता है। इस संदर्भ में गोपाल रॉय लिखते है कि 'होरी की मिथ्या मर्यादा-भावना भी उसे पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करती है। प्रेमचन्द यह मानते प्रतीत होते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में निर्धन व्यक्ति, किसान और मजदूर की कोई मर्यादा नहीं होती। होरी की यही स्थिति है। दारोगा, पटवारी, कारिन्दा और साहूकार सब उसका अपमान करते हैं, झिड़कते हैं और खरी-खोटी सुनाते हैं। फिर भी होरी अपने को 'मरजाद' वाला आदमी समझता है'[7] इस तरह पुरुष पात्र होरी की जीवनस्थितियाँ वर्ग-शोषण, भूमि-अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढाँचों का परिणाम हैं। यहाँपुरुष की स्थिति समाज से निर्देशित भूमिका पर आधारित है जिसमेकर्तव्य और सम्मान के बोझ को प्रस्तुत करता है। वेबर के सामाजिक प्रतिष्ठा सिद्धांत के अनुसार 'पुरुष की पहचान उसकी सामाजिक छवि और सामुदायिक अपेक्षाओं से बनती है जो होरी के चरित्र में स्पष्ट है। इसलिए गोदान में पुरुष की भूमिका कर्तव्य, सामाजिक संरचना, पितृसत्ता और आर्थिक संघर्ष पर आधारित है।'[8] जिसके परिणामस्वरूप, पुरुष मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक दबावों का सामना करते हुए भी उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता। इस तरह सामाजिक दृष्टिकोण से 'गोदान' उपन्यास में पुरुष-संवेदना भारतीय ग्रामीण समाज की व्यवस्था, विडंबनाओं के बीच पुरुष-संवेदना की बहुस्तरीय अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास का पुरुष केवल सत्ताधारी नहीं, वह आर्थिक शोषण, सामाजिक दबाव, नैतिक द्वंद्ध और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बीच पीड़ित मनुष्य भी है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार हिंदी कथा साहित्य में पुरुष संवेदना विविध आयामों से विकसित होती हुई भावभूमि रही है। अब तक पुरुष पात्रों को अक्सर शक्ति, नियंत्रण, दायित्व, परंपरा और वर्चस्व के प्रतीक के रूप में देखा जाता रहा, किंतु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अंतर्गत पुरुष संवेदना एक मानवीय, आंतरिक और भावनात्मक संरचना के रूप में उभरती है। यह विश्लेषण पुरुष के बाह्य व्यवहार नहीं, वह उसके भीतर की भावनात्मक टूटन,अकेलापन,अपेक्षा,संघर्ष,असुरक्षाऔर आत्मपरक संवेदनाओं को समझने का प्रयास करता है।डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पर्य उन उपन्यासों से हैं जो मूलत: मनोविश्लेषण पर आधारित हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से इतर जो सामाजिक उपन्यास हैं उनके पात्रों की एक चुनी हुई विशेषताएँ होती हैं। हम उनके बारे में इतने विश्वस्त होते हैं कि कह सकते हैं कि अमुक स्थिति में अमुक काम करेंगे या अमुक बात कहेंगे। किंतु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य पात्रों की मनोवैज्ञानिक शोध करना है। मनुष्य वास्तव में कैसा है, इसका पता लगाना ही उन उपन्यासों का कार्य होता है। सक्रिय जीवन ही केवल जीवन नहीं है, बल्कि वह बहुत महत्वपूर्ण जीवन भी नहीं है, वास्तविक जीवन तो विचारों और अनुभूतियों का आंतरिक जीवन ही है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इसी आंतरिक जीवन को प्रधानता देते हैं।'[9] इस प्रकार मनोविज्ञान विशेषत: फ्रायड, जुंग, तथा ऐड्लर की अवधारणाएँ से प्रभावित है पुरुष संवेदना के विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।हिंदी कथाकारों ने जैसे जेनेन्द्र,इलाचन्द्र जोशी,अज्ञेय के उपन्यासों में पुरुष पात्रों के मनोवैज्ञानिक संघर्षों को उभारा हैमनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से अज्ञेय का शेखर: एक जीवनी फ्रायड और जुंग के मनोविश्लेषण सिद्धांत मानव व्यवहार के अवचेतन आवेगों, अपराधबोध, दमन और आत्मसंघर्ष पर आधारित हैं। जैसे कि 'अपनी ही अशान्तचित्तता, अस्थिरता शेखर के लिए असह्य होने लगी। उसे लगने लगा, वह कुछ चाहता है, लेकिन क्या चाहता है, यह नहीं जान पाया और इसी को जानने के लिए वह अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगा, अनेक रास्तों पर एक साथ ही भटकने लगा...'[10] इस तरह 'शेखररू एक जीवनी' में पुरुष की भूमिका सामाजिक ढाँचे से हटकर आंतरिक यात्रा, द्वंद्ध और आत्मस्वीकृति की खोज में परिवर्तित होती है।शेखर की मनोदशा फ्रॉयड के 'ईड,ईगो,सुपर ईगो' संघर्ष का जीवंत उदाहरण हैकि 'दूर से देखा जाए, तो मानवता का सारा विकास ही कम-से-कम अभी तक यही है। मानवता कुछ चाहती है, लेकिन जानती नहीं कि क्या और उसे जानने की खोज में' अनेक रास्तों पर एक साथ ही भटक रही है... मानो सारी मानवता, अपने जीवन की गति में किसी दीर्घ वय: सन्धि पर खडी है और अपने से उलझ रही है, उसका यौवन, उसके कृतित्व के दिन अभी आगे हैं।'[11] यह कथन पुरुष की भूमिका को सामाजिक ढाँचे से बाहर निकालकर स्वतंत्र चेतना, व्यक्तिगत अर्थ और आत्मअन्वेषण तक ले जाता है।शेखर सोचता है कि 'उसने देखा, समझ लिया कि कोई किसी का नहीं है, यानी इतना नहीं है कि उसका स्वामी-निर्देशक, भाग्य-विधायक बन सके। कोई ऐसा नहीं है जिस पर निर्भर किया जा सके, जिसे प्रत्येक बात में पूर्ण, अचूक माना जा सके। यदि किसी का कोई है, तो उसकी अपनी बुद्धि, मनुष्य को उसी के सहारे चलना है, उसी के सहारे जीना है, ऐसे स्थान अवश्य हैं, जहाँ बुद्धि जवाब दे जाती है, लेकिन इसमें वह ईमानदारी है, जो बात नहीं जानती, वहाँ पर चुप रहती है, गलत उत्तर नहीं देती।'[12] इस तरह पुरुष संवेदना का पारंपरिक नायक की छवि से हटकर अधिक मानवीय, भावनात्मक और टूटे हुए रूप में उभरती है।पुरुष भोगवादी नहीं, भावुक भी हैवह कर्त्ता ही नहीं, पीड़ित भी है,वह पितृसत्ता का वाहक होने के साथ-साथ उसका शिकार भी है अत: मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के दृष्टिकोण से हिंदी उपन्यास साहित्य में पुरुष संवेदना को मानव मनोविज्ञान के उस हिस्से को सामने लाती है जिसे सामाजिक व्यवस्था ने लंबे समय तक छिपाए रखा। यहाँ पुरुष न तो केवल शक्ति का प्रतीक है और न ही मात्र संवेगहीन अस्तित्व के बजाय वह भी

उतना ही भावनात्मक, असुरक्षित और संवेदनशील है जितना समाज ने कभी स्वीकार नहीं किया।

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववाद ने व्यक्ति को समाज, परंपरा और दैवी सत्ता से मुक्त करते हुए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, चुनाव और नैतिक दुविधाओं पर बल दिया है। हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववादी पुरुष-पात्र किस प्रकार आत्मसंघर्ष, अपराध-बोध, अकेलेपन, प्रेम-विरोध, और अर्थ-संकट के माध्यम से अपनी संवेदना रचते हैं। उपन्यासों में पुरुष-संवेदना नायकत्व का दावा करती है न सामाजिक पुरुषत्व का, अपितु वह सबसे पहले मानवीय अपूर्णता को पहचानती है।समाज में सुधार और यथार्थवादी युगीन समस्याओं से हटकर व्यक्ति के भीतरी अनुभव, अकेलेपन और अर्थसंकट को केन्द्रीय स्थान मिला। इस परिवर्तन के पीछे यूरोपीय अस्तित्ववादी दर्शन की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष छाप मानी जाती है। अस्तित्ववाद, जैसा कि जाँ-पॉल सार्त्र केइस विचार से शुरू होता है कि 'मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है, बाद में अपना सार स्वयं गढ़ता है'[13] हिन्दी में अज्ञेय,निर्मल वर्मा और कमलेश्वर ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके यहाँ पुरुष पात्र न तो पारंपरिक नायक हैं और न ही केवल समाजसुधारक वे अकेले, अपराधबोध से भरे, प्रेम और इतिहास दोनों के सामने असहाय और अपने निर्णयों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठाने को विवश व्यक्ति हैं। यही वह क्षेत्र है जहाँ पुरुष-संवेदना और अस्तित्ववाद एक दूसरे से मिलते हैं।डॉ. श्याम सुंदरदास अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है कि 'हिन्दी अस्तित्ववादी उपन्यासों में पुरुष-संवेदनाव्यक्ति की स्वतंत्रता और अकेलेपन में जन्म लेती है,अपराध-बोध और विद्रोह के बीच अपना अर्थ खोजती है, प्रेम और स्मृति में अपने अस्तित्व को टटोलती हैऔर अंतत: अमानवीय इतिहास में मानवीय स्वीकृति तलाशती है'[14] इस तरह आधुनिक जीवन की जटिलताओं, मूल्यों के विघटन और व्यक्ति की मानसिक असुरक्षा ने पुरुष पात्रों की संवेदना को नई दिशा दी। हिंदी उपन्यासों में पुरुष अब केवल सामाजिक भूमिका निभाने वाला पात्र नहीं, वह अपने अस्तित्व के अर्थ को खोजता हुआ एक जटिल मनुष्य है। 'व्यक्तित्व की अपनी लीकें होती हैं- एक रूझान होता है। और उस के आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाँधता है, उन से भी तो एक लीक बनती है- लीक कहिए, चौखटा कहिए, ढाँचा कहिए। या कह लीजिए दुनिया में अपना एक स्थान।'[15] इसी परिवर्तनशीलता में पुरुष पहचान का संकट भी दिखाई देता है। यह पुरुष संवेदना की मूल समस्या से जुड़े प्रश्नों को खड़ा करता है क्या भावनात्मक कमजोरी उसकी मर्दानगी को चुनौती देती हैबदलते सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक ढाँचों में पुरुष की भूमिका क्या होनी चाहिए?इन प्रश्नों के उत्तरों की तलाशआधुनिक हिन्दी उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख', 'नदी के द्वीप', 'न आने वाला कल', 'सारा आकाश' बंद अंधेरे कमरे में 'गुनाहों का देवता', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' आदि उपन्यासों में पुरुष का अस्तित्वगत स्वरूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन उपन्यासों में पुरुष जीवन की जटिलताएँ और पुरुष मनोविज्ञान और संवेदना को नये आयाम से प्रस्तावित किये हैं। अस्तित्ववाद व्यक्ति की स्वतंत्रता, चयन, दायित्व और जीवन की निरर्थकता को केंद्र में रखता है। हिंदी उपन्यासों में यह चेतना विशेष रूप से पुरुष पात्रों के मानसिक द्वंद्व, अकेलेपन, पहचान का संकट और आत्मसंघर्ष के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती,राजेंद्र यादव, विनोद कुमार शुक्ल और कमलेश्वर जैसे रचनाकारों के उपन्यासों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी उपन्यासों में पुरुष अब पारंपरिक नायक न रहकर एक संवेदनशील, प्रश्नाकुल और आत्मनिर्माणशील मनुष्य के रूप में उपस्थित है। अस्तित्ववादी दृष्टि के अनुसार निर्मल वर्मा का 'एक चिथड़ा सुख' में पुरुष जीवन का अर्थ व्यक्ति स्वयं गढ़ता है, और मनुष्य अस्तित्वगत अकेलेपन और अनिश्चितताओं से गुजरते हुए अर्थ की खोज करता है।एक चिथड़ा सुख में पुरुष पात्र दुनिया की सामान्य भूमिकाओं से हटकरभावनात्मक असुरक्षाअकेलापनविक्षेपित संबंधअर्थ की खोजके बीच झूलता है।उपन्यास का स्वर पुरुष की सामाजिक भूमिका की नहीं, उसके विस्थापन और भावनात्मक रिक्तता की व्याख्या करती है। जैसे कि 'उसे लगा, सुख कितना छोटा होता है। आता भी नहीं, कि चला जाता है।'[16] यह पंक्ति सुख की क्षणभंगुर अनुभूतिपुरुष मन की उस संवेदना को प्रकट करती है जहाँसुख स्थायी नहीं,उपलब्धि भी टिकाऊ नहींऔर भावनात्मक संतोष तुरंत हाथ से फिसल जाता है।यह आधुनिक पुरुष की भावनात्मक असुरक्षा का सशक्त संकेत यह पुरुष संवेदना को अस्तित्ववादी संकट,आत्म-विनाश की चेतना,और जीवन की निरर्थकता से जोड़ देती है। उपन्यास में एक स्थान पर आया है कि 'मुझे वर्षों पहले पढ़ी हुई एक लाइन याद आती है।' 'the woods decay and the woods decay'[17] यह अनुभूति यह दोहराव जीवन कीएकरसता, निरंतर क्षरणऔर अर्थहीनताकी अनुभूति को तीव्र करता है।इसी प्रकार 'आदमी कैसे अपने को छोड़कर कुछ और बन जाता है।'[18] यह वाक्य पुरुष की अपने ही अस्तित्व से असंतुष्ट है,स्वयं से पलायन करना चाहता है, और किसी अन्य रूप में ढलने की बेचैनी से ग्रस्त है।यह संवेदना आधुनिक, शिक्षित, शहरी पुरुष की विशिष्ट पहचान बनती है।इसी तरह 'जो दिखाई देता है, वह नहीं है' जो सचमुच में है, वह दिखाई नहीं देता।'[19] यह पंक्ति पुरुष संवेदना को दार्शनिक ऊँचाई प्रदान करती है।यहाँ पुरुषबाह्य यथार्थ पर अविश्वास करता है,आंतरिक सत्य की खोज में है,यह दृष्टि अस्तित्ववाद और आधुनिकतावादी चेतना से गहराई से जुड़ी है।हिंदी उपन्यासों में अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के अंतर्गत पुरुष संवेदना आधुनिक मनुष्य की त्रासदी का प्रतिनिधित्व करती है। यह संवेदना नायकत्व की चमक से मुक्त होकर मानवीय दुर्बलताओं, आत्मसंघर्ष और अर्थखोज को केंद्र में लाती है। इस प्रकार हिंदी उपन्यास पुरुष को एक संवेदनशील, प्रश्नाकुल और खुद से निर्णय लेने वालाव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मेनेजर पाण्डेय,उपन्यास और लोकतन्त्र, पृष्ठ सं.11,वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली 2002.
2. जयशंकर प्रसाद,कामायनी आशा सर्ग पृष्ठ सं.27,अशोक प्रकाशन, नईदिल्ली।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं.452,रचना प्रकाशन,जयपुर।
4. देवी प्रसाद गुप्त,साहित्य सिद्धान्त और आलोचना, पृष्ठ सं.31, आत्माराम एंड संस, दिल्ली1978.
5. प्रेमचंद, गोदान, पृष्ठ 16.मालिक एंड कंपनी, जयपुर 2016.
6. वहीं, पृष्ठ 111.
7. गोपाल रॉय,उपन्यास की पहचान गोदान : नया परिपेक्ष्य, पृष्ठ125,अनुपम प्रकाशन, पटना।
8. रामविलास शर्मा,हिंदी उपन्यास और समाज,लोकभारती प्रकाशन,

इलाहाबाद।
9. हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा– डॉ. रामदरश मिश्र,पृ. 80,86, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली।
10. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 127.
11. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 127.
12. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 81.
13. जाँ–पॉल सार्त्र, अस्तित्ववाद, पृ. 25 (Sartre, Jean-Paul. Existentialism Is a Humanism. 1946 लेक्चर विभिन्न अंग्रेजी अनुवाद.) https://www.marxists.org/reference/ archive/ sartre/works/exist/sartre.htm
14. डॉ. श्यामसुन्दर,अस्तित्वाद और साहित्य, पृ. 9,पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2004.
15. अज्ञेय,नदी के द्वीप,मयूर पेपरबैक्स, पृष्ठ 35,नई दिल्ली।
16. निर्मल वर्मा, एक चिथड़ा सुख,पृष्ठ 97 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,2024.
17. वहीं पृष्ठ 121.
18. वहीं पृष्ठ 136.
19. वहीं पृष्ठ 136.

****